मई दिवस पर विशेष

मज़दूर और देश

देश क्या हैं? देश कैसे बने? मज़दूर और देश का क्या रिश्ता है? ऐसे सवाल ही बहुत से लोगों को अजीब लग सकते हैं। पर दुनिया भर में आज राष्ट्र-भर में आज राष्ट्र अथवा देश एक बुनियादी चीज के तौर पर हैं। सब देशों को मिला कर ही आज की पूंजीवादी विश्व व्यवस्था गठित है। और देशहित को मिला कर ही आज की पूंजीवादी विश्व व्यवस्था गठित है। और देशहित को आज दुनिया के हर हिस्से में पवित्र गाय के तौर पर पेश किया जाता है, इस पर ऊंगली उठाना बीते काल की ब्रह्म हत्या के समान है। मानव इतिहास के हज़ारों वर्ष के दौर में धर्म की आड़ में लाखों लोगों के कत्ल हुए हैं। पर देश हित की आड़ में तो पिछले सौ साल में ही आठ-दस करोड़ लोगों को कत्ल हुआ है। दासों और अर्द्धदासों के मुक्ति संघर्ष के लिए जैसे धर्म की पोल खोलना बहुत महत्त्व का था, उसी प्रकार आज मज़दूरों के मुक्ति संघर्ष के लिए देशहित की पोल खोलने का महत्त्व है। एक बात शुरू में ही साफ कर दें। पांच-सात हज़ार साल से मानव समाज लुटेरों, कमेरे और बीच के तबकों में बंटा हुआ है। रोटी-कपड़ा-मकान-सुरक्षा हासिल करने के ढंग अब तक के सामाजिक ढांचों को तय करते रहे हैं। और रोटी-कपड़ा-मकान-सुरक्षा प्राप्त करने के तरीकों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इन बदलावों के आधार पर स्वामी और दास, सामंत और अर्द्धदास, व्यापारी और किसान-दस्तकार, पूंजी के नुमाइंदे और मज़दूर वाले परिवर्तन हुए हैं। और अभी हम बंटे हुए समाज में ही हैं। ऐसे समाज में लुटेरे अपने दमन-शोषण को आड़ देने के लिए पवित्र गऊओं को खड़ा करते हैं। शिक्षा-दीक्षा-प्रचार-प्रवचन-संस्कार द्वारा वे ऐसा ताना-बाना बुनते हैं कि शोषितों-पीड़ितों में लुटेरों की पवित्र गायों के लिए पूजा-अर्चना का भाव उभरे। मेहनतकशों की आंखों पर पट्टी बांध कर, पवित्र अफीम की घुट्टी पिला कर उनकी चमड़ी उतारना लुटेरों के लिए आसान हो जाता है।

आइये, अब देश को देखें। आज के राष्ट्रों अथवा देशों की उम्र तीन-चार सौ साल से ज्यादा नहीं है। सामंती युग में छोटे-छोटे रजवाड़ों और बड़े-बड़े साम्राज्यों का घालमेल था। उपभोग के लिए उत्पादन वाली सामंती व्यवस्था में जब बिक्री के लिए उत्पादन यानी माल का प्रोडक्शन काफी बढ़ने लगा तब माल की आवश्यकताओं ने नये राजनीतिक सांचों की मांग की। मिलती-जुलती भाषा, संस्कृति और लगते इलाके के आधार पर राजनीतिक सांचे, यानी राष्ट्रीय राज्य का गठन मंडी के लिए उत्पादन की जरूरत के मुताबिक था। इसलिए बढ़ते माल उत्पादन के साथ राष्ट्रीय राज्यों के गठन की मांग उठी। सामंती व्यवस्था के छोटे-छोटे रजवाड़ों और बड़े-बड़े साम्राज्यों के जोड़-तोड़ का सिलसिला चला और राष्ट्रों का उदय हुआ। ऐतिहासिक कारणों और घटना क्रम की जटिलता की वजह से बहुराष्ट्रीय देश भी बने। इस प्रकार माल उत्पादन के अनुरूप देश के रूप में राजनीतिक इकाइयों का गठन हुआ। अत: देश माल उत्पादन की आवश्यकता की उपज हैं। और सामाजिक विकास के जिन नियमों ने माल उत्पादन का दबदबा कायम किया, वे नियम ही आज बिक्री के लिए उत्पादन की मौत की घंटी बजा रहे हैं। आज समय मंडी के लिए उत्पादन की जगह मनुष्य की आवश्यकता के लिए उत्पादन की मांग कर रहा है। ऐसे में बिक्री के लिए उत्पादन से जिनके हित जुड़े हुए हैं, वे देश-रूपी अपने राजनीतिक ढांचों को बचाने के लिए कमर कसे हैं। पूंजीवादी व्यवस्था के गहराते संकट का बोझ वे मज़दूरों के कंधों पर डाल रहे हैं। मज़दूरों के विरोध को पूंजी के नुमाइंदे देशहित के खिलाफ़ घोषित करते हैं और मज़दूरों को कुचलने के लिए माहौल बनाते हैं। इस प्रकार पुलिस-फौज-जेल-कचहरी वाले डंडे के साथ-साथ पूंजी के नुमाइंदों ने 'देशहित सर्वोपरि' की पवित्र अफीम अपनी रक्षा के लिए उगाई है। दूसरी तरफ, मनुष्य की जरूरत के लिए उत्पादन के समर्थकों ने माल उत्पादन और उसके देश-रूपी राजनीतिक तंत्र को अपने हमले का निशाना बनाया है। देशभक्ति की पूंजीवादी अफीम के खिलाफ़ 1848 में ही 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' ने आवाज बुलंद की, 'मज़दूरों का अपना कोई देश नहीं होता। दुनिया के मज़दूरों एक हो।' यूं कम्युनिस्ट लेबल लगाये आज राज्य-पूंजीवाद की समर्थक धारायें भी हैं जो देश की एकता, अखंडता और विकास के पुराने पूंजीवादी कचरे को बेसुरे राग में अलाप रही हैं। इनके बुरे नतीजे रूस-चीन की घटनाओं में देखे जा सकते हैं। उत्पादन की शक्तियां आज इतनी विकसित हो गई हैं कि मानव हित में उनका इस्तेमाल देशों के आधार पर नहीं हो सकता। देशों को तोड़ कर, विश्व साम्यवादी व्यवस्था कायम करके ही उत्पादन की शक्तियों का आज हम अपने भले के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। माल उत्पादन के सर्वोच्च रूप, पूंजीवादी माल उत्पादन से विशेष रूप से जुड़े और उससे पीड़ित-शोषित मज़दूरों की मुक्ति माल उत्पादन को खत्म करने में ही है। और यह माल उत्पादन के सांचे देश को खत्म किये बिना नहीं हो सकता। इसलिए मज़दूर और देश का रिश्ता जानी दुश्मनी का रिश्ता है। देश पूंजीवादी खोल है जिसे काट कर ही मज़दूर वर्ग मुक्ति की राह पर आगे बढ़ सकता है और संपूर्ण मानव जाति के हित का दरवाजा खोल सकता है।

('मज़दूर आंदोलन की एक झलक' से साभार)

● पेज 5 का शेष

जितने बड़े पैमाने पर पैसा इस पूरे मामले से जुड़ा है, ऐसे में इससे जुड़े पक्षों की पहचान आसान नहीं होती। अपने निजी जेट विमानों में घूमते सीईओ से लेकर ग़रीब आदिवासी और विशेष पुलिस अधिकारी के बीच जो कि एकाध हज़ार रुपयों के लिए अपने ही लोग़ों के खिलाफ़ लड़ते, बलात्कार करते, हत्यायें करते हैं और समूचे गांवों को जला कर खनन शुरू करने की ज़मीन तैयार करते हैं-हिस्सेदारों की एक समूची जमात है जो एक, दो, तीन नहीं, बल्कि कई स्तरों पर है।

इन लोग़ों को अपने हित घोषित नहीं करने पड़ते, बल्कि उन्हें अपने पदों और दफ़्तरों का अपने हितों को साधने के लिए इस्तेमाल करने का मौका दिया जाता है। क्या हम कभी जान पायेंगे कि कौन-सी राजनीतिक पार्टी, कौन मंत्री, कौन सांसद, कौन नेता, कौन जज, एनजीओ, विशेषज्ञ सलाहकार या कौन पुलिस अफ़सर की इस लूट में सीधे या परोक्ष रूप में हिस्सेदारी है? आखिर हम कैसे जान पायेंगे ताजा माओवादी 'अत्याचार' की खबर देने वाला कौन-सा अखबार, या फिर मौके से सीधे खबर देने वाला कौन-सा टीवी चैनल-या मौके से खबर नहीं देने वाला, या सीधे-सीधे कहें तो झूठी खबर देने वाला कौन-सा टीवी चैनल इसमें हिस्सेदार है?

आखिर, स्विस बैंकों के खातों में भारतीय नागरिकों द्वारा गुप्त रखे गये अरबों डॉलर के लिए, क्या सबूत हैं? आखिर पिछले चुनाव में खर्च किये गये दो अरब डॉलर आये कहां से? सवाल है कि हाल ही में पी.साईनाथ ने जिन करोड़ों रुपयों के बारे में लिखा था, जिसे राजनीतिक पार्टियों और नेताओं ने चुनाव से पहले 'कवरेज पैकेज' के रूप में ऊंचे किस्म की, कम किस्म की और सीधे प्रसारण के लिए मीडिया को दिये थे, आखिर वे पैसे आये कहां से थे? (अगली बार जब आप किसी टीवी एंकर को किसी अतिथि से पूछते हुए चिल्लाते सुनें कि आखिर माओवादी चुनाव में खड़े क्यों नहीं होते? आखिर वे मुख्य धारा में क्यों नहीं आते? तो चैनल को जरूर एसएमएस करियेगा कि 'क्योंकि वे आपके रेट नहीं चुका सकते')।

आखिर हम इस तथ्य का क्या करें कि केंद्रीय गृहमंत्री और ऑपरेशन ग्रीन हंट के सीईओ चिदंबरम ने एक कॉरपोरेट वकील के अपने कैरियर में तमाम खनन निगमों की ओर से मुकदमा लड़ा है? आखिर इस तथ्य का क्या करें कि वे वेदांता में अकार्यकारी निदेशक थे? और हम इस तथ्य का क्या करें कि वित्त मंत्री बनते ही उन्होंने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया था? और हम इस तथ्य का क्या करें कि वित्त मंत्री बनते ही उन्होंने सबसे पहले जिस एफआईडी की मंजूरी दी, वह मॉरिशस की एक कंपनी ट्विनस्टार होल्डिंग्स को स्टरलाइट के शेयर खरीदने की थी, जो वेदांता समूह का ही हिस्सा है?

हम इस तथ्य का क्या करें कि जब उड़ीसा के कुछ आंदोलनकारियों ने सुप्रीम कोर्ट में वेदांता के खिलाफ़ सरकारी दिशा निर्देश के उल्लंघन और इस बात की ओर इशारा करते हुए - कि कंपनी द्वारा पर्यावरण को किये गये भयावह नुकसान व मानवाधिकारों के उल्लंघन का आरोप लगाते हुए नार्वेजियन पेंशन फंड ने इसमें किये गये निवेश से हाथ खींच लिया है-मुकदमा दायर किया तो जस्टिस कपाड़िया ने सुझाया कि वेदांता की जगह स्टरलाइट को जो इसी की सहोदर कंपनी है, ले लिया जाए। इसके बाद उन्होंने खुली अदालत में सहर्ष घोषणा कर डाली कि स्टरलाइट में उनके भी शेयर हैं। उन्होंने स्टरलाइट को खनन के लिए वन के संदर्भ में आवश्यक मंजूरी दे दी, बावजूद इसके कि खुद सुप्रीम कोर्ट की विशेषज्ञ कमेटी ने स्पष्ट कहा था कि यह मंजूरी नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि खनन से जंगल, जल संसाधन पर्यावरण और यहां रहने वाले हज़ारों आदिवासियों का जीवन व आजीविका नष्ट हो जायेगी। जस्टिस कपाड़िया ने सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट का बिना कोई खंडन किये मंजूरी दे दी।

हम इस तथ्य का क्या करें कि दांतेवाड़ा में 2005 में ज़मीन की सफाई की बर्बर कार्यवाही जो कि 'स्वयंस्फूर्त' जन मिलिशया की आड़ में सलवा जुडुम नाम से शुरू हुई, उसका औपचारिक उद्घाटन टाटा के साथ एमओयू पर दस्तखत होने के बाद कुछ ही दिनों बाद किया गया? और उसी दौरान बस्तर में जंगल युद्ध कौशल प्रशिक्षण स्कूल की स्थापना की गई?

इस तथ्य का क्या करें कि 12 अक्टूबर, 2009 को दांतेवाड़ा के लोहंडीगुड़ा में लगने वाले टाटा स्टील के 10 हज़ार करोड़ की परियोजना के संदर्भ में अनिवार्य जनसुनवाई कलेक्टरेट के भीतर एक छोटे से कमरे में की गई। चारो ओर सुरक्षा बलों का घेरा था और भाड़े के 50 आदिवासियों को बस्तर के दो गांवों से सरकारी जीपों में लाद कर यहां ला कर बैठाया गया था (जन सुनवाई को सफल घोषित किया गया और जिला कलेक्टर ने बस्तर के लोग़ों को सहयोग के लिए धन्यवाद दिया)।

आखिर इसका क्या अर्थ लगाया जाये कि जिस वक्त प्रधानमंत्री ने माओवादियों को 'आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा' कहना शुरू किया (जो संकेत था कि सरकार अब इनको छोड़ने वाली नहीं है), यहां की कई खनन कंपनियों के शेयर आसमान पर चढ़ गये?

दरअसल, इस युद्ध के लिए खनन कंपनियां बेचैन हैं। यह एक पुरानी तकनीक है। उन्हें लगता है कि हिंसा के असर से वे लोग़ इलाका छोड़ कर भाग जायेंगे जो अब तक उन्हें हटाये जाने के प्रयत्नों का प्रतिरोध करते रहे हैं। यह देखा जाना बाकी है कि नतीजा वास्तव में यही होगा या फिर इससे माओवादियों की संख्या में वृद्धि होगी।

पश्चिम बंगाल के पूर्व वित्त मंत्री डॉ.अशोक मित्र ने अपने एक लेख 'द फैंटम एनेमी' (भुतहा दुश्मन) में ठीक उलटी दलील रखी थी। उन्होंने कहा था कि माओवादी जिस तरह से 'भयानक और गंभीर हत्यायें' कर रहे हैं, वह छापामार युद्ध कौशल का एक क्लासिक तरीका है, जिसे उन्होंने छापामार युद्ध की पाठ्य-पुस्तकों से सीखा है। डॉ.मित्र का कहना है कि उन्होंने प्रशिक्षण दे कर एक पूरी गुरिल्ला सेना को खड़ा कर लिया है जो अब भारतीय राज्य का सामना करने को तैयार है। माओवादियों द्वारा मचाई जा रही 'तबाही' दरअसल, उनके तईं समझा-बूझा प्रयास है कि सही नीति न अपना सकने वाले भारतीय राज्य का रोष उन पर बरसे। माओवादियों को उम्मीद है कि राज्य ऐसी बर्बर कार्रवाई करेगा जिससे आदिवासी भड़क जायेंगे। डॉ.मित्र कहते हैं कि आदिवासियों के इसी आक्रोश की माओवादियों को एक व्यापक जन विद्रोह में बदलने की उम्मीद है। जाहिर है, यही वह 'दुस्साहसवाद' का आरोप है जो तमाम वाम धारायें माओवादियों पर लगाती रही हैं। इससे यही ध्वनि निकलती है कि माओवादी सिद्धांतकार क्रांति और खुद को सत्ता में लाने के लिए उन्हीं लोग़ों के विनाश को आमंत्रित कर डालेंगे जिनके प्रतिनिधित्व का वे दावा करते हैं। अशोक मित्र पुराने कम्युनिस्ट हैं जिन्होंने पश्चिम बंगाल में 60 और 70 के दशक में नक्सली उभार के दौर को नजदीक से देखा है। उनके विचारों को यों ही खारिज नहीं किया जा सकता। लेकिन यह याद रखना जरूरी है कि आदिवासियों के साहसिक प्रतिरोध का इतिहास बहुत लंबा रहा है, जो माओवाद के जन्म से काफी पुराना है। इसलिए इन्हें खाली दिमाग की ऐसी कठपुतली के रूप में देखना जिन्हें मुट्ठी भर मध्यवर्गीय माओवादी सिद्धांतकार बरगला सकें, उनके साथ अन्याय करना ही होगा।

ऐसा लगता है कि डॉ.मित्र लालगढ़ जैसी स्थितियों की बात कर रहे हैं, जहां अब तक खनिज संपदा की कोई बात सामने नहीं आई है (हम भूल न जायें कि लालगढ़ में मौजूदा जन उभार तब शुरू हुआ था, जब मुख्यमंत्री जिंदल स्टील की एक फैक्टरी का उद्घाटन करने गये थे। और जहां स्टील फैक्टरी हो सकती है, क्या लौह अयस्क बहुत दूर होगा?)।

यहां लोग़ों का गुस्सा दरअसल उनकी भयावह गरीबी, पुलिस और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, जिसने 30 साल से ज्यादा राज्य पर शासन किया है, के सशस्त्र मिलिशिया के हाथों दशकों के उत्पीड़न व दमन के खिलाफ़ है।

चलिये दलील के लिए हम भले ही यह सवाल न करें कि हज़ारों पुलिस व अर्द्धसैन्य बल आखिर लालगढ़ में क्या कर रहे हैं और माओवादी दुस्साहसवाद के सिद्धांत को स्वीकार भी कर लें, तब भी यह तस्वीर का बहुत छोटा हिस्सा ही होगा।

वास्तविक समस्या यह है कि दरअसल, भारत के चमत्कारिक 'विकास' की दास्तान का ध्वजवाहक जहाज दलदल में फंस गया है। यह विकास भारी सामाजिक और पर्यावरणीय कीमत पर हुआ था। और आज जिस तरह नदियां सूख रही हैं, जंगल गायब हो रहे हैं, भू-जल स्तर गिर रहा है कि आखिर उनके साथ हो क्या रहा है, विष फल सामने आ रहे हैं।

समूचे देश में असंतोष है। लोग़ लगातार अपनी ज़मीनें देने से इनकार कर रहे हैं, अपने संसाधनों को देने से मना कर रहे हैं। उन्होंने अब झूठे वादों पर विश्वास करना बंद कर दिया है। अचानक ऐसा लगने लगा है कि 10 फीसदी की विकास दर और लोकतंत्र साथ-साथ नहीं चल सकते। पठारी शिखरों वाली पहाड़ियों से बॉक्साइट निकालने के लिए, जंगलों की ज़मीन के नीचे से लौह अयस्क पाने के लिए भारत की 85 फीसदी जनता को उसकी ज़मीनों से हटा कर शहरों में लाने के लिए (चिदंबरम का कहना है कि वह चाहते हैं ऐसा हो) भारत को पुलिस राज्य बनना पड़ेगा। सरकार को सैन्यीकरण करना होगा। सैन्यीकरण को उचित ठहराने के लिए उसे एक दुश्मन चाहिए। वह दुश्मन माओवादी हैं। वे कॉरपोरेट कट्टरपंथियों के लिए वैसे ही हैं जैसे हिंदू कट्टरपंथियों के लिए मुसलमान (क्या कट्टरपंथियों की एक ही बिरादरी होती है? क्या इसीलिए आरएसएस ने चिदंबरम की मुक्त कंठ प्रशंसा की है?)।

यह समझना जबरदस्त भूल होगी कि अर्द्धसैन्य बलों की टुकड़ियां, राजनांदगांव एयरबेस, बिलासपुर ब्रिगेड मुख्यालय, गैरकानूनी गतिविधि अधिनियम, छत्तीसगढ़ विशेष जनसुरक्षा कानून और ऑपरेशन ग्रीन हंट की व्यवस्था महज कुछ हज़ार माओवादियों को जंगलों से निकालने के लिए की जा रही है। ऑपरेशन ग्रीनहंट के तमाम हो-हल्ले में चिदबंरम आक्रमण का शंखनाद करें या न करें, अभी से आपातकाल की स्थिति का आभास हो रहा है। (आपके लिए गणित का एक सवाल: कश्मीर की एक छोटी-सी घाटी को नियंत्रित करने के लिए अगर छ: लाख सैनिकों की जरूरत पड़ती है, तो करोड़ों लोग़ों के उभरते आक्रोश को दबाने के लिए कितने सैनिक चाहिए?)

हाल ही में गिरफ़्तार माओवादी नेता कोबाद गैंडी का नार्को परीक्षण करने की बजाय उनसे बात करने का विचार बेहतर हो सकता है। पूछे जाने योग्य एकमात्र सवाल: क्या हम बॉक्साइट को पहाड़ों में ही रहने दे सकते हैं?

अनुवाद: अभिषेक श्रीवास्तव